पत्रकारिता से आधुनिक मीडिया तक का सफर

वर्तमान मिशन का कम, प्रोफेशन का समय अधिक है, इसलिए स्वयं मिशन भी प्रोफेशन बनकर जीवित है। परंपरागत रूप से मिशनरी माने गए कार्य अध्ययन-अध्यापन, धार्मिक-आध्यात्मिक कार्य व कर्मकांड, सेवा-स्वयंसेवा, साहित्य-सृजन, पत्रकारिता आदि आजकल पेशेवर रूप में ही अधिक चमक रहे हैं। मिशन के अपने मूल्य व मान्यताएँ हैं, वाणिज्य-व्यवसाय के अपने इरादे व नियम होते हैं। व्यवसाय-बाजार अपने प्रवृत्त्यात्मक नियमों के अनुरूप संचालित हों तो कोई हर्ज नहीं, लेकिन जब येनकेनप्रकारेण पैसा उगाहने की प्रवृत्ति और सत्ता की चाभी हथियाने की धुन सवार हो तो स्थिति विकट हो जाती है। ऐसे में पेशेवर नजरिए से नया मुहावरा गढ़ा जाना बिलुकल स्वाभाविक है; जिसमें नई व्यवहारिकी को वहन करने की क्षमता हो। परंपरागत विचारणाओं के नैरंतर्य को बनाए रखने का यही नित्य विधान है। 'पत्रकारिता' से 'मीडिया' तक के सफर को ही लें, तो दोनों शब्दों के भाव-भार में अंतर दिखता है। पत्रकारिता सामान्यतः लिखित, वैचारिक, मिशनरी, गंभीर को इंगित करने वाला शब्द है; बेशक जिसमें समय की जरूरत के मुताबिक आकाशवाणी और दूरदर्शन भी जुड़े, परंतु जिस 'जर्नल', 'जर्नलिज्म' और 'जर्नोलॉजी' के लिए हिन्दी में 'पत्रकारिता' व्यवहृत हुआ है, उसका अर्थ-संदर्भ मूलतः पत्र से ही जुड़ा है। यह अखबारनवीसी एवं पत्र-पत्रिकाओं से जुड़ी सामग्री का लेखन व प्रकाशन है, जबकि 'मीडिया' जनसंचार माध्यमों के अधुनातन विकास-विस्तार को अपनी व्याप्ति में समेटता है। विशेष तौर पर यह इलेक्ट्रॉनिक मीडिया जैसे रेडियो, टेलीविजन, इंटरनेट, कंप्यूटर, मोबाइल पर आधारित जनसंचार का अभिव्यंजक है; संचार क्रांति से उत्पन्न तेज, पेशेवर, दृश्य-श्रव्य तथा सीधे प्रसारण की सूचनाएँ व जानकारियाँ हथेली में उपलब्ध रखने का द्योतक है। मीडिया के क्षेत्र में विशेष अनुसंधान करने वाले मार्शल मेक्लूहान ने काफी पहले ही कहा था कि 'मीडियम इज द मेसेज' अर्थात् 'माध्यम ही संदेश है।' मीडिया का शाब्दिक अर्थ ही है माध्यम। लेकिन अब जब 'मीडिया' शब्द उच्चरित होता है, तो माध्यम और संदेश का अंतर अमूमन नहीं झलकता। उदाहरणस्वस्प, 'टीवी देखना' कहने का तात्पर्य है टीवी पर चैनल देखना, समाचार, सीरियल या सिनेमा देखना। यह टीवी यंत्र का भी बोधक है और उस पर प्रसारित कार्यक्रमों का भी। मोबाइल (यंत्र) देखने का मतलब मोबाइल पर (प्रसारित कार्यक्रम) देखने से है। यहाँ माध्यम और संदेश के बीच अभेद है।

सूचनाओं-संवादों के लेने-देने की परंपरा मनुष्य और उसके समाज के अभ्युदय के समय से ही शुरू हुई। व्यक्तिगत स्तर पर कुशल-क्षेम जानना-जनाना संवाद-संचार है, वहीं सामूहिक स्तर पर सूचना-समाचार का विनिमय पत्रकारिता, जनसंवाद अथवा जनसंचार के दायरे में आता है। पुराने जमाने में राजा अश्वमेध का घोड़ा छोड़कर, डुगडुगी पिटवा कर, नगाड़े बजवा कर और हरकारे द्वारा सूचनाएँ संप्रेषित करवाता था, फिर राज्यादेश और संदेश शिलालेखों व स्तूपों पर लिखवाकर फैलाए लगे। धीरे-धीरे सार्वजनिक महत्त्व की बातों का प्रकाशन होने लगा। प्रेस की स्थापना के साथ ही पत्र-पत्रिकाओं को निकालने का ख्याल आया। लगभग साढ़े पाँच-पौने छह सौ साल पहले सर्वप्रथम जर्मनी में प्रेस की स्थापना हुई, हालाँकि चीन में दो हजार साल पुराना एक मुद्रित ग्रंथ और एक हजार साल पुराना मुद्रित त्रिपिटक की सामग्री सुरक्षित होने की बात भी कही जाती है। भारत में सबसे पहले गोवा में 1550 ई. के आस-पास प्रेस की स्थापना पुर्तगालियों द्वारा हुई। इसके सात-आठ वर्ष बाद वहीं से पहली पुस्तक भी छपी। 1779-80 ई. में कोलकाता से अंग्रेजी में प्रकाशित 'बंगाल गजट', जिसे 'हिकी गजट', 'इंडियन गजट' भी कहते हैं, इसे प्रथम भारतीय पत्र होने का गौरव प्राप्त है। ईस्ट इंडिया कंपनी के अंग्रेज कर्मचारी जेम्स आगस्टस हिकी ने इसे निकाला था, जिसमें व्यावसायिक जानकारियों के अलावे अंग्रेजी हुकूमत और वायसराय तक को नहीं बख्शा गया। इसके लिए हिकी को जेल की भी हवा खानी पड़ी। इसके बाद भारतीय भाषाओं में पत्र निकलने शुरू हुए, जिसके सूत्रधार राजा राममोहन राय थे। 'संवाद कौमुदी', 'दिग्दर्शन', 'बंगदूत' से होते हुए हिन्दी का पहला साप्ताहिक पत्र 'उदंत मार्तण्ड' छपा, जो चला तो डेढ़ साल ही, पर हिन्दी पत्रकारिता की नींव सिद्ध हुआ। बरसों बाद इसे दुबारा निकालने का प्रयास हुआ, पर

तब भी यह ज्यादा दिन नहीं चल सका। इसी सिलसिले में पहले उर्दू और फिर हिन्दी में 'पयामे आजादी' 1857 ई. के आंदोलन की आवाज बना –'हम हैं इसके मालिक, हिन्दुस्तान हमारा/पाक वतन है कौम का, जन्नत से भी प्यारा।' भारत में बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध में रेडियो और उत्तरार्द्ध में दूरदर्शन का प्रसारण आरंभ हुआ। अंतिम दशक में इंटरनेट और कंप्यूटर भी आपस में जुड़े। वर्तमान सदी के आरंभ से समाचार पत्र ऑनलाइन होने लगे। इस समय लगभग सवा लाख पत्र-पत्रिकाएँ पंजीकृत हैं, जिनमें अकेले हिन्दी की लगभग पैंतालीस हजार हैं। भाषा को मानक रूप देने में पत्र-पत्रिकाओं के योग को भुलाया नहीं जा सकता। पहले डिक्शनरी न होने पर अखबार देखकर वर्तनी जाँची जाती थी। नए-नए शब्दों को गढ़ने और उन्हें प्रचलित कराने और नए मुहावरे व पुट देने का कार्य पत्र-पत्रिकाओं ने बखूबी किया है और यह संभावना सदैव बनी रहेगी।

पूर्व में ज्यादातर एकतरफा जनसंचार होता था, लेकिन विकास के साथ दुतरफा संवाद बढ़ा है। फिर भी सभी चाहने वालों को जनसंचार का मंच मिल जाए, यह जरूरी नहीं, क्योंकि सब इसके अनुकूल होते भी नहीं, दूसरी ओर संस्थान की भी अपनी प्रतिबद्धताएँ हैं। लेकिन सर्वसुलभ सोशल मीडिया के तीव्र प्रसार व त्वरित प्रभाव ने जन-जन को अपने सामर्थ्य के अनुरूप अभिव्यक्ति का आधार उपलब्ध कराया है। स्वाभाविक है कि यहाँ भी सब कुछ निरापद नहीं होता। ठीक के साथ बेठीक मीडिया ही नहीं, वरन् हर चीज के साथ अभिन्नतः संलग्न है। श्रीकृष्ण ने कहा भी है कि 'सर्वारंभा हि दोषेण' यानी दुनिया में सब कुछ दोषयुक्त है, बस कहीं कम तो कहीं ज्यादा का फर्क है। लेकिन इसकी आड़ में अक्षमता को छुपाया नहीं जा सकता। चाहे सोशल मीडिया-ई मीडिया का व्हाट्स एप्प, फेसबुक, ट्विटर हो अथवा मुद्रित-इलेक्ट्रॉनिक मीडिया का अन्य घटक, इसका उत्तम अभिप्रेत 'सत्व' का संपोषण करना होना चाहिए। यही बात 1950 ई. में अखिल भारतीय संपादक सम्मेलन को संबोधित करते हुए पूर्व प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरू ने भी कही थी कि 'जीवन में जो कुछ निकृष्ट है, उसकी क्रमशः बढ़ोतरी को रोकने में सहायता करना पत्रकारों का काम है। पत्रकारों को अधिक ऊँचे दर्जे तथा अधिक उज्ज्वल सामाजिक चेतना के निर्माण में सहायता ही नहीं करनी है, वरन् जीवन की छोटी-छोटी बातों में सामाजिक व्यवहार भी सिखाना है।'

सवाल यह है कि सत्व व उन्नत चेतना किसे कहा जाए? किसी की उन्नत चेतना औरों को पतनशील लग जाती है, तो किसी को अपनी पतनशील चेतना ही उन्नत लगती है। आजकल मन, वचन, कर्म सुविधानुसार चयित सत्य 'सेलेक्टेड ट्रूथ' के हिसाब से चलते हैं। यह क्षणिक सच वास्तविक नहीं है। उदाहरणार्थ, खेत से बाजार में, बाजार से घर लाकर आलू की माटी, जड़, छिलका, खराब अंश को निकाल कर सब्जी बनती है। उसमें से भी जला भाग अलग कर सब्जी खाई जाती है, जिससे ऊर्जा व खून आदि बनता है और बाकी मल बनकर निकल जाता है। आलू से बने खून व ऊर्जा को खत्म होते देर नहीं लगती। इस प्रकार एक समय विशेष में मिट्टी सहित आलू, उसका छिलका व कचरा, उसकी सब्जी, उससे बना खून व मल सब वास्तविक ही लगते हैं, पर वे सब कहाँ टिकते हैं? इसीलिए मनीषा मानती है कि जो नाशवान है, वह सत्य नहीं है, लेकिन आज का बहुतांश संप्रेषण कचरे वाले क्षणिक सच के इर्द-गिर्द घूमता प्रतीत होता है। सारा जोर किसी प्रकार अपने पाठकों, श्रोताओं, दर्शकों की संख्या बढ़ाने पर है। अन्य क्षेत्रों की तरह मीडिया में भी यह विश्वास उठ गया है कि यह सब सही तरीके से भी प्राप्त हो सकता है। पेड न्यूज के तहत योजनाबद्ध तरीके से पूर्वनियोजित खबर तथा प्रायोजित बहस को उत्तेजक रूप दिया जाता है। यह सही है कि विदेशी चैनलों की तरह यहाँ न्यूज रूम की अपनी मारपीट, यौन हिंसा की घटनाएँ सामने नहीं आई हैं, पर बहस में उकसा-उकसा कर हल्ला-गदाल, तू-तू मैं-मैं कराया जाता है और सुर्खियाँ बटोरी जाती हैं। इसे लेकर आम लोगों के साथ उसमें भाग लेने वाले अधिकतर विश्लेषक भी चिंतित हैं। चाहे पाकिस्तान के खिलाफ एयर स्ट्राइक हो या फिर डोकलाम कांड, देशभक्ति का एक विचित्र प्रदर्शन भारतीय मीडिया में देखने को मिला है। ज्वलंत मुद्दों पर बहस में एकपक्षीयता के साथ-साथ कुछ मुद्दों पर एंकर न्यायाधीश की भूमिका निभाते नजर आते हैं। यह उचित भी हो सकता है, स्वयं गांधी जी भी पत्रकार को न्यायाधीश की भूमिका वाला मानते थे,

जिसके पास 'समरी ट्रायल' का अधिकार है। पर यह तभी उचित हो सकता है, जब संतुलित नजरिये से 'ट्रायल' हो। जटिल व खर्चीली कानूनी प्रक्रिया के कारण अदालत में जिन समस्याओं पर सही पक्ष नहीं पहुँच पाता, उनके लिए पत्रकारिता एक प्लेटफार्म है, जहाँ पक्ष-विपक्ष का तर्क ईमानदारी से रखा जा सकता है, उसका सांगोपांग विवेचन-विश्लेषण किया जा सकता है। इस प्रकार मीडिया लोकतांत्रिक प्रशासन का अविभाज्य अंग है, अगर यह अपने वास्तविक सरोकारों से सन्न्द्ध हो तो अनूठा न्यायालय भी है और बृहत्तर जनसंसद भी।

मीडिया समय का साक्ष्य, लोक का अभिभावक तथा लोकतंत्र का प्रहरी है; पल-पल परिवर्तन का प्रतिबिंब है। जब सारे अस्त्र निरर्थक हो जाते हैं तो इसे अजमाने की बात कही जाती है -'खींचो न कमान को न तलवार निकालो/जब तोप मुकाबिल हो तो अखबार निकालो।' पत्रकारिता में जितनी शक्तियाँ निहित हैं, वह उसके सही प्रयोजन व उपयोग पर अधिक निर्भर है, यद्यपि यह बिलकुल भी जरूरी नहीं कि दिशा व प्रयोजन ठीक होने पर उसकी कद्र हो ही जाए। बहुत सारे लोग फिर भी मुखालफत करेंगे, क्योंकि सही दिशा में चलने से उनके नापाक मंसूबों पर पानी फिरता है। सही निष्ठा, समर्पण की ताकत की बदौलत भारत की आजादी की लड़ाई के समय पत्र-पत्रिकाओं ने आंदोलन की ऐसी रीढ़ तैयार की कि जनमानस के उद्वेलन से अंग्रेजी हुकूमत डगमगाने लगी। बार-बार उस पर प्रतिबंध लगता था। आजादी की आवाज को बुलंद करना उस समय अंग्रेज सरकार को 'अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का हनन' लगता था और भारतीय-पाश्चात्य विचारकों के लिए 'अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को सार्थक' करने का अवसर। अभिव्यक्ति-स्वातंत्र्य को आज भी अपने-अपने ढंग परिभाषित किया जाता है। मोटे तौर पर व्यक्तिगत मानहानि, मिथ्या आरोप, वैयक्तिक एकांत और गोपनीयता का अतिक्रमण, चटपटी-मसालेदार खबर के साथ पीत और नील पत्रकारिता आदि को अभिव्यक्ति स्वातंत्र्य के नाम इजाजत नहीं है। इसके अलावे न्याय प्रशासन में हस्तक्षेप, दुराग्रहपूर्ण सम्मति का प्रकाशन, विचाराधीन मामलों में लोगों को भ्रमित करने का प्रयास तथा न्यायाधीश पर अयोग्यता और अविवेकी होने का आरोप लगाना अदालती अवमानना के दायरे में आता है। मीडिया को न्यायालय के निर्णय से असहमति और ओझल प्रामाणिक पक्ष को सामने लाने का पूरा हक है, साथ ही भ्रष्टाचार को उजागर करने का भी, लेकिन न्यायालय के अस्तित्व पर प्रश्नचिन्ह उठाना लोकतांत्रिक प्रणाली के औचित्य पर सवाल करना होगा। कानूनी बंदिशों के अतिरिक्त व्यावहारिक बाधाएँ भी हैं, जो उचित की अभिव्यक्ति को रोकती हैं। कहते हैं कि जो जितना छोटा है, उसे उतनी ही अधिक स्वतंत्रता हासिल है, क्योंकि उसकी बात का अधिक नोटिस नहीं लिया जाता, उसका खास असर नहीं होता; लेकिन पूंजी की कमी, अन्य संसाधनों का अभाव, असुरक्षा की भावना, असामाजिक तत्वों के काकसी घेरे की चुनौतियों के बीच उन्हें काम करना होता है। छोटे पत्र-पत्रिकाओं को धन-उपार्जन के लिए कई ऐसे तरीके ईजाद करने पड़ते हैं, जो पत्रकारीय मूल्यों के विपरीत हैं। बड़े पत्रों के पास संसाधन तो हैं, पर उनके समक्ष बेतहाशा पूंजी निवेश, काले धन का सम्मिलन, कैरियरिजम का बोलबाला, गलाकाट प्रतिस्पर्द्धा, राजनीतिक जुड़ाव और तकनीक के मामले में सदैव अव्वल व सचेत रहने की चुनौती है।

मीडिया में पूंजी है, कैरियर, ग्लैमर, प्रसिद्धि है, लेकिन अखबारों और पत्रिकाओं को जूता, कंबल, घड़ी, बैग, सौंदर्य प्रसाधनों की स्कीम से जोड़कर बेचने की प्रवृत्ति पनप गई है। स्कीम के अंतर्गत जूता, घड़ी, कंबल आदि मिलेंगे, इसलिए अखबार पढ़ना चाहिए - यह पत्रकारिता का उत्थान है या पतन? नए संचार माध्यमों के प्रभावस्वरूप मन-मस्तिष्क में ध्यान की केंद्रीयता घट रही है। आभासी दुनिया में जीने की लत, सोने, सुनने, देखने जैसी स्वास्थ्य संबंधी उत्पन्न समस्याओं का समाधान भी जरूरी है। समाज की धड़कन का मापक मीडिया मुनाफे का कारोबार बनकर जीवित रहे - यह बहुत अच्छी बात है, पर केवल मुनाफे का व्यवसाय बनकर चलने की बजाय बृहत्तर संदर्भों से जुड़ा रहे - यह भी जरूरी है।